

# अरविंद केजरीवाल और 'आप' नये विकल्प की तलाश

-मनोज कुमार झा

चार राज्यों के विधानसभा चुनाव परिणामों ने कांग्रेस को बुरी तरह हिला कर रख दिया है। दिल्ली में सत्तानशी शीला की पराजय ने कांग्रेस पार्टी को मुंह छुपाने लायक भी नहीं छोड़ा है। वहीं, दिल्ली में अरविंद केजरीवाल की आम आदमी पार्टी (आप) का अभ्युदय बहुतांश के लिये चौंकाने वाला रहा है। 'आप' के इस तेवर ने दिखा दिया है कि जनता को सकारात्मक विकल्प दिखाई पड़े वह बदलाव के लिये बोट करने में गुरेज नहीं करने वाली। इससे यह बात भी साबित हो जाती है कि जनता यथास्थितिवादी नहीं, परिवर्तनकारी है। जरूरत है तो एक नई पहल की। 'आप' के इस चमत्कारिक विजय अभियान से यह धारणा भी खंडित हुई है कि जनता हस्तक्षेप नहीं करती-वह कमोबेश अराजनीतिक है।

**'कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी'।**  
यह मनोदशा अब जनता की नहीं रही। यह ठीक है कि अरविंद केजरीवाल और उनकी पार्टी के पास भ्रष्टाचार से लड़ने का और जनता की मूलभूत समस्याओं के समाधान का कोई कारगर औजार नहीं, पर विचारधारा के आग्रहों और विभ्रमों के अंतहीन जाल में उलझे हुए अग्रगामी नायकों को यह जरूर स्वीकार करना चाहिए कि यह औजार तो स्वयं जनता ही है, जिसे एक स्तर पर गतिशील करने का काम नैतिक आग्रहों को सबसे ऊपर रख रहे केजरीवाल और उनके साथियों ने किया है।

नेताओं को भले न हो, पर जनता को नैतिक आग्रहों की परवाह है। इसके लिए वह आगे बढ़ कर क्रम बढ़ाती रही है, भले ही बाद में उसे थोखा मिला हो। इमरजेंसी के बाद होनेवाले सत्ता-परिवर्तन में यही देखने को मिला था। राजीव गांधी के पतन और वीपी सिंह के अभ्युदय में भी यही देखने को मिला। पर सत्ता परिवर्तन की इस लड़ाई में जनता को कुछ नहीं

मिला। हां, राजनीति के क्षेत्र में लुटेरों के कई गिरोह काफी मजबूत हो गए। कांग्रेस और भाजपा से लड़ने का दावा करने वाले अपनी लूट कायम रखने के लिए उनमें ही मिल गए। निहित स्वार्थों के लिए ये इस हद तक नीचे गिर गए कि भ्रष्टाचार के आरोपों में कई नेताओं को जेल जाना पड़ा। कई अभी भी जेल में हैं। इन्होंने और इनके पूर्ववर्तियों ने राजनीति को गंदगी का पर्याय ही बना डाला। राजनीति घृणित हो गई। कवि इसे 'नंगी वेश्या' बताने लगे। इसकी वजह यह है कि लोकतंत्र के नाम पर लूटतंत्र कायम ही रहा। आधुनिक सत्तातंत्र के पास शोषण के सूक्ष्म उपकरण हैं तो मध्ययुगीन लाठी भी है जो आम आदमी के जरा-सा सिर उठाते ही उस पर बजती है। अरविंद केजरीवाल इससे बच नहीं सकते।

पर विकल्पहीनता के दौर में जब 'ना हम दक्षिण ना हम वाम' की छवि लिये अरविंद केजरीवाल सामने आए तो जनता ने उनमें विश्वास जताया और इस तथाकथित लोकतंत्र-लूटतंत्र में ही इतनी जगह निकल आई कि बिना धनबल और गुंडाबल के ही 'आप' ने कांग्रेस के साथ ही भाजपा को भी धूल चटा दी। यह सकारात्मकता का सबसे बड़ा पक्ष है। क्या यह अनुभव सत्ता परिवर्तन की जगह व्यवस्था परिवर्तन के लक्ष्य से जुड़े लोगों के काम आ सकता है जो बंधे-बंधाये वैचारिक-सैद्धांतिक फ़ामूले में फ़िट करके ही सभी चीजों को देखने के आदी हो चुके हैं?

यह ठीक है, अरविंद केजरीवाल वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक ढांचे पर प्रहार न करते हुए, सुधारवादी अभियान चलाना चाह रहे हैं तो क्या यह जड़तावादी स्थितियों में कुछ गतिशीलता पैदा करने वाला नहीं है। यह प्रश्न विचारणीय है। इतिहास इस बात का गवाह है कि सुधारवादी आंदोलन क्रांतिकारी बदलाव और सामाजिक विकास की जमीन तैयार करते रहे हैं। इसलिए राजनीति के क्षेत्र में 'आप' के उभार को जरा भी कमतर नहीं आंका जाना चाहिए। कांग्रेस और भाजपा



का लंबा अतीत रहा है। भारतीय राजनीति में इनकी जड़ें गहरी रही हैं। ये राष्ट्रव्यापी राजनीति संगठन हैं जिनके कई आनुषंगिक व सहयोगी संगठन भी हैं। और 'आप'। दिल्ली आधारित एक संगठन जिसका परंपरागत रूप में कोई राजनीतिक स्वरूप अभी बन भी नहीं रहा है। फिर भी इसने लुटेरे भ्रष्ट नेताओं, लाखों-लाख कार्यकर्ताओं और अरबों की पूंजी वाले कांग्रेस और भाजपा जैसे दलों को पानी पिला दिया। इस प्रयोग का यदि विस्तार होता है तो आने वाले दिनों में वर्तमान सत्तातंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती साबित होगा। यह ठीक है कि व्यवस्था के मूल में निहित शोषण-उत्पीड़न की विषबेल को यह निर्मूल नहीं कर सकता, पर इसने जनता

के एक व्यापक वर्ग को क्रियाशील बना दिया है। अब कांग्रेस और भाजपा जैसे तमाम दल इसे अपने रंग में रंगने के प्रयास में लग जाएं तो इसे कतई अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

भाजपा, कांग्रेस, जदयू ने इसे चारा डालना शुरू कर दिया है। मुलायम, लालू, ममता और वामपंथियों की बोलती बंद है। तीसरे मोर्चे की जगह अरविंद केजरीवाल और उनके साथियों ने यह एक नया मोर्चा खोल दिया है जो अपनी साफ-सुथरी छवि के साथ बहुत ही आकर्षक प्रतीत होता है, पर सवाल ये भी है कि इसका ये आकर्षण कब तक बरकरार रहेगा। क्या 'आप' अपने आप को संगठित रख पाते हुए अपना विस्तार कर पाएगी या

यह लहर क्षणजीवी साबित होगी? जल्दी ही होने जा रहे लोकसभा चुनावों तक क्या 'आप' जैसे प्रयोग दिल्ली से निकलकर दूसरी जगहों पर भी आकार ले सकेंगे? 'आप' संगठन के स्वरूप को लेकर यह सवाल पैदा होना स्वाभाविक है। यह भूलना नहीं होगा कि 'आप' और अरविंद केजरीवाल एक-दूसरे के पर्याय हैं और यह इस नवोदित दल की बहुत बड़ी सीमा है। व्यक्तिकेंद्रित संगठनों के विस्तार में बड़ी बाधाएँ होती हैं। कांग्रेस नेतृत्व परिवारवाद पर आधारित है, पर संगठन व्यक्तिकेंद्रित नहीं। भाजपा नेतृत्व परिवारवाद पर आधारित नहीं, पर यह मोदी केंद्रित होता जा रहा है। इससे भाजपा को फ़ायदा होगा या नुकसान, यह आगे पता चलेगा।

वैसे, कांग्रेस के अलावा अन्य दलों ने बुझे-बुझे मन से ही यह स्वीकार कर लिया है कि 'आप' ने जनता को जोड़ने का काम किया है। यहाँ यह सवाल खड़ा है कि 'विचारधारा' और 'सिद्धांत' के उपकरणों से लैस 'क्रांतिकारी बदलाव' में यकीन रखने वाले संगठन ऐसा कर पाने के बारे में कभी सोच तक क्यों नहीं सके।

यहाँ सवाल भी विचारणीय है कि जो मूलगामी बदलाव के लिए संसदीय संघर्ष यानी चुनाव के रास्ते में यकीन नहीं रखते, वे विकल्प के लिए किन मॉडलों को अपनाया चाहेंगे। अरविंद केजरीवाल ने जनता को जोड़ने का जो सफल मॉडल पेश किया है, क्या वह मौजू है?

एक बात स्पष्ट है कि भाजपा भी अब खुलेआम सांप्रदायिक मुद्दों को उछाल नहीं सकती। नरेन्द्र मोदी भी भ्रष्टाचार और विकास को ही मुद्दा बना रहे हैं। कहा जा रहा है कि मध्यप्रदेश में शिवराज सिंह अपनी साफ-सुथरी छवि और तथाकथित विकास कार्यों की वजह से ही भारी बहुमत से तीसरी बार सरकार बना पाने में सफल हो पाए।

छत्तीसगढ़ और राजस्थान में भाजपा की जीत के पीछे 'मोदी फैक्टर' बताया जा रहा है। इस 'मोदी फैक्टर' की असलियत लोकसभा चुनावों में ही जगजाहिर होगी। देखना ये होगा कि यूपी, बिहार, पश्चिम बंगाल और अन्य राज्यों में जनता मोदी के नाम पर वोट देती है या नहीं।

खास बात तो यह है कि देश में मोदी लहर हो या न हो, कांग्रेस विरोधी लहर तो अवश्य है जिसे भाजपा भी भुनाने की कोशिश में है और यही कारण है कि उसने 'कांग्रेस-मुक्त भारत' का नारा दिया है।

कांग्रेस ने भ्रष्टाचार और कुशासन की अति कर दी। यह अति ही उसे ले डूबने वाली है। अगले आम चुनाव में कांग्रेस का सूपड़ा साफ होना तय है। विधान सभा चुनावों के परिणामों से यही निष्कर्ष सामने आता है। राष्ट्रीय स्तर पर इसका फ़ायदा निस्संदेह भाजपा को ही मिलेगा। वैसे, बदलाव की राजनीति करने वालों के लिये अरविंद केजरीवाल ने एक मॉडल पेश कर दिया है।

दिल्ली में कांग्रेस की तरह भाजपा भी किनारे लग सकती थी और इस बात में दो राय नहीं कि 'आप' की सरकार भी बन सकती थी, पर मोदी के हुंकारों और फुफकारों ने भाजपा को थोड़ी ताकत तो अवश्य दी है। बहरहाल, मोदी भी बात तो भ्रष्टाचार की ही कर रहे हैं। कांग्रेस विरोधी लहर को और तेज कर रहे हैं। कांग्रेस की तरह ही भाजपा में भी भ्रष्टाचारियों की कमी नहीं, पर अन्य दलों के दामन भी तो साफ नहीं। कांग्रेस विरोधी लहर का फ़ायदा किसे मिलेगा, ये समझ पाना कोई मुश्किल नहीं। वैसे, अरविंद केजरीवाल से सीख लेते हुए लुटेरे दल जनता से अपने आप को जोड़ नहीं सकते, न जनता उनसे जुड़ सकती है। जनता नये विकल्प की तलाश में है।

## विचारधाराहीन विकल्प

दिल्ली विधानसभा चुनावों में सत्तर में से अट्ठाईस सीटें जीत कर आम आदमी पार्टी चर्चा के केन्द्र में है। हालांकि दावे सैतालिस सीटें जीतने के किये जा रहे थे लेकिन बिना लम्बी तैयारी के ही ऐसा पहला प्रदर्शन बुरा नहीं है। इस तरह के सिर्फ दो ही उदाहरण भारतीय राजनीति में हैं। एक असम गण परिषद जिन्होंने प्रफुल्ल महन्त के नेतृत्व में असम में सरकार बनायी थी और दूसरा एन.टी. रामाराव की तेलुगु देशम पार्टी द्वारा अस्सी के दशक में आन्ध्र प्रदेश में बनायी सरकार। लेकिन जहाँ असम गण परिषद की सफलता के पीछे तकरीबन एक दशक तक 'आल असम स्टूडेंट यूनियन' के नेतृत्व में चला आन्दोलन था वहीं तेलुगु देशम पार्टी को सफलता दिलाने में एन.टी. रामाराव का हाथ था जो तेलुगु फ़िल्मों के उस समय के महानायक थे क्रिकेट में सचिन के समकक्ष। उस लिहाज से 'आप' के पास न कोई बड़ा स्थापित नेता था न ही आन्दोलन का लम्बा इतिहास। लेकिन समानता यह है कि उपरोक्त दोनों की ही तरह आप भी बिना अपनी नीतियाँ और विचारधारा स्पष्ट किये सिर्फ एक मुद्दे, भ्रष्टाचार खत्म करने के नाम पर, सत्ता के करीब पहुँची है।

इधर अभी दिल्ली की जीत किसी निष्कर्ष पर पहुँची भी नहीं है कि केजरीवाल ने आने वाले लोकसभा चुनावों में सभी सीटों पर चुनाव लड़ने की घोषणा कर दी है। साथ ही साथ हरियाणा विधान सभा के भी चुनाव लड़ने की घोषणा की है। यानि कि जब तक आपके काम के आधार पर जनता 'आप' का मूल्यांकन कर सके, कि आपने अपने वादे पूरे किये कि नहीं और उनसे उसे कुछ लाभ हुआ कि नहीं, उससे पहले अपने पक्ष में उभरे जन समर्थन का ज्यादा से ज्यादा फ़ायदा उठा लो, सत्ता पर ज्यादा से ज्यादा कब्जा कर लो।

हरियाणा में निश्चित रूप से आज के दिन केजरीवाल की तूती बोल रही है। इसलिये अगर विधान सभा चुनाव जल्द ही हो जाते हैं तो उनका सत्ता में आना तय है। लेकिन लोक सभा के चुनावों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उनके जन लोकपाल आंदोलन का केन्द्र दिल्ली होने के कारण और एक साल के थोड़े समय के कारण उसका अपेक्षित प्रभाव दक्षिण के राज्यों में नहीं है। उत्तर भारत में अपने भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन से अपने आपको विकल्प के रूप में बेशक केजरीवाल ने स्थापित कर दिया हो लेकिन मध्य और दक्षिण भारत में अभी उनकी स्वीकार्यता नहीं

बढ़ी है। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या केजरीवाल सचमुच भारतीय राजनीति में एक विकल्प हैं? क्या राजनीति में विचारधारा (आईडियोलॉजी) की जरूरत सचमुच खत्म हो गयी है? क्या राजनीति सिर्फ महानायकों या मुखौटों के दम पर ही चलेगी? क्या बिना किसी आर्थिक नीति के सिर्फ कुछेक मुद्दों के बल पर, चाहे वह मुद्दा भ्रष्टाचार जितना हाहाकारी ही क्यों न हो, लम्बे समय तक राजनीति की जा सकती है? क्या जनता को जल्द ही यह नहीं समझ आ जायेगी कि भ्रष्टाचार और आर्थिक नीति का चोली दामन का साथ है। और बिना आर्थिक नीतियाँ स्पष्ट किये आप महंगाई और भ्रष्टाचार को खत्म करने के अपने दावे पर जनता का विश्वास नहीं जमा सकते। इसके अलावा सामाजिक समानता, जाति और धर्म के सवाल, क्षेत्रवाद आदि अनेकों ऐसे मुद्दे हैं, जो भारतीय राजनीति में ज्वलन्त हैं और जिनपर केजरीवाल को अभी मुंह खोलना है। लेकिन सबसे बड़ा, यक्ष प्रश्न, यह है कि क्या पूंजीवाद और समाजवाद के अलावा भी कोई विचारधारा है जिसे केजरीवाल विकल्प के रूप में पेश करेंगे या फिर पूंजीवाद की ही तीसरी पार्टी, (कांग्रेस और भाजपा के बाद) के रूप में उभर रहे हैं। राजनीतिक इतिहास गवाह है कि किसी भी ऐसे आंदोलन या पार्टी को जो किसी एक मुद्दे या समस्या को लेकर पैदा हुआ हो, भारतीय जनता ने दूसरा मौका तब तक नहीं दिया है जब तक कि उसने अपनी आर्थिक नीतियाँ और विचारधारात्मक प्रतिबद्धता स्पष्ट ना कर दी हों। असम गण परिषद, जनता पार्टी आदि का कूड़ेदान में फेंका जाना इसी प्रेरक्य में समझा जा सकता है। इसलिये संचार माध्यमों के रथ पर सवार होकर आज चाहे केजरीवाल कितनी ही ऊंचाइयों पर पहुँच जायें लेकिन वहाँ बने रहने के लिये अन्ततः उन्हें मुंह खोलना ही पड़ेगा। और भारतीय राजनीति के यक्ष प्रश्नों-महंगाई, बेरोजगारी, आरक्षण, निजीकरण, क्षेत्रीयता, धर्म, जाति, विदेश व्यापार-आदि से रूबरू होना ही पड़ेगा।

इन प्रश्नों के उत्तर पर ही उनका भविष्य निर्भर है। अगर इन प्रश्नों के उत्तर से वह पूंजीवाद की ही तीसरी टीम के रूप में ऊजागर होते हैं तो विकल्प की आस लिए बैठी जनता को भारी निराशा होगी। इसलिये उन्हें यह भी याद रखना चाहिए कि जितनी जल्दी जनता ने उन्हें, एक विकल्प मानकर, उपर चढ़ाया है अपनी आशाओं के फलीभूत न होने पर उससे भी तेजी से वह उन्हें कूड़ेदान में फेंक देगी।

-अजातशत्रु